नियमसार, गाथा १४२

ण वसो अवसो अवसस्स कम्म वावस्सयं त्ति बोद्धव्वा।
जुत्ति त्ति उवाअं त्ति य णिरवयवो होदि णिज्जुत्ती।।१४२।।
जो वश नहीं वह 'अवश' आवश्यक अवश का कर्म है।
वह युक्ति है वह यत्न है, निरवयव कर्ता धर्म है॥१४२॥

टीका : यहाँ अवश... अवश का अर्थ स्वाधीन। पर के वश नहीं। राग या दया, दान ऐसे विकल्प के वश नहीं परन्तु अकेला आत्मा के वश। सच्चिदानन्द प्रभु शुद्धोपयोग स्वयं के वश है, उसे अवश कहा जाता है। आहाहा! दया, दानादि व्यवहाररत्नत्रय भेदोपचार का आश्रय, वह तो पराधीन है, परवश है। वह वस्तु धर्म नहीं। आहाहा! **यहाँ अवश...** अर्थात् पर के वश नहीं। **परमजिनयोगीश्वर...** परम जिनयोगीश्वर। आत्मा के आनन्द में जिसका उग्र आलम्बन है। अपने आनन्दस्वरूप में ज्ञानानन्द में जिसका आलम्बन है, वह **परम आवश्यक कर्म अवश्य है...** उसे परम अवश्य का कार्य है, वह अवश्य होता है। आवश्यक कार्य है, वह अवश्य होता है। आहाहा! यह आवश्यक तो हमेशा धन्धा करना, यह करना, वह अवश्य का कार्य... नहीं। आहाहा! यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय के जो विकल्प हैं, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, पूजा, व्रत, नियम, वह भी परवशपना है। क्योंकि राग है, वह परवशपना है। वह आवश्यक नहीं। वह आवश्यक—अवश्य करनेयोग्य नहीं। आहाहा! करनेयोग्य तो यह एक ही वस्तु है। है?

जो योगी... जो कोई आत्मा के स्वरूप में जुड़ान करनेवाला, पुण्य और पाप के

विकल्प के राग में जुड़ान नहीं करनेवाला। आहाहा! यह आवश्यक क्रिया। आहाहा! ऐसी **निज आत्मा के परिग्रह के अतिरिक्त...** निज आत्मा के परिग्रह के अतिरिक्त - अपने आत्मा की पकड़ के अतिरिक्त। आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द आदि अन्दर सर्वांग आनन्द से भरपूर प्रभु ऐसा जो निज परिग्रह, उसे पकड़ा है जिसने, वह उसका परिग्रह है। आहाहा! परिग्रहधारियों को स्त्री, पुत्र, पैसा, इज्जत परिग्रह है। वे सब दुःख के निमित्त हैं। वे दुःखरूप नहीं हैं।

मुमुक्षु : उन पर लक्ष्य करे तो दुःख होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का निमित्त है। उसके ऊपर मेरा-तेरा लक्ष्य करे तो दुःख होगा। परचीज़ कोई नुकसान करनेवाली (नहीं है), वह तो परज्ञेय है। ज्ञेय भी एकरूप है, उसके दो भाग करना कि यह ठीक है और अठीक है, वह तो कल्पना का भाव है। वह कहीं संयोगिक भाव कराते नहीं। संयोगिक जो चीज़ ज्ञेय और यहाँ ज्ञान। (ज्ञेय) पूरी दुनिया, ज्ञान स्वयं। ज्ञेय के दो भाग करना, इस ज्ञेय में भाग नहीं है। परन्तु अज्ञानी भाग करता है कि यह मुझे ठीक है और यह मुझे ठीक नहीं है। यह ठीक और अठीक भाव, वह दुःखरूप परवश पराधीन है। आहाहा! ऐसी बात है।

निज आत्मा के परिग्रह के अतिरिक्त... आहाहा! अपना आत्मा परिग्रह। धूल-बूल तो कहीं रह गयी तुम्हारी। धूल में धूल आयी। आहाहा! धूल किसी की हुई नहीं। वह तो ज्ञेय में है। ज्ञान में पूरी दुनिया ज्ञेय है और आत्मा उसका ज्ञाता ज्ञान है। बस, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। आहाहा! ज्ञान के अतिरिक्त किसी भी चीज़ को ज्ञेयरूप से न जानकर भाग करना कि यह ज्ञेय ठीक है और यह ज्ञेय ठीक नहीं, ऐसा जो भाव, वह मिथ्यात्वभाव, वह दुःखरूप है। चीज़ नहीं। चीज़ दुःखरूप नहीं। वह तो जगत की चीज़ (जगत में रही है)। आहाहा!

यहाँ तो आवश्यक स्ववश की बात करनी है। इसलिए **जो योगी निज आत्मा के परिग्रह के अतिरिक्त...** आहाहा! एक आत्मा के अतिरिक्त **अन्य पदार्थों के वश नहीं होता...** आहाहा! राग के वश नहीं होता, दया, दान के वश नहीं होता। आहाहा! विकल्प के वश नहीं होता, वह धर्मी जीव है। **इसीलिए जिसे 'अवश' कहा जाता है,...** इसीलिए

उसे अवश—पर में वश नहीं हुआ और स्व के आश्रय से स्व में वश हुआ, इसलिए उसे अवश कहा जाता है। आहाहा!

आत्मा आनन्द और ज्ञान और अनन्त गुणस्वरूप है। वह एक ही परिग्रह ज्ञानी को है, इसके अतिरिक्त दूसरी सभी चीज़ें ज्ञान में परज्ञेयरूप से ठीक-अठीक किये बिना जाननेयोग्य है। वह जाननेयोग्य है, यह व्यवहार है। आहाहा! परचीज़ कोई सुख-दुःख का कारण नहीं है। स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, लक्ष्मी यह कहीं सुख-दुःख का (कारण नहीं है)। वह तो जगत की जड़ चीज़ है। आहाहा! उसमें भाग करना... ज्ञेय एक ही प्रकार है। एक ओर ज्ञान तथा एक ओर पूरी दुनिया ज्ञेय। जाननेयोग्य ज्ञेय, वह व्यवहार। उसके भी दो भाग करना कि यह मुझे ठीक पड़े और यह मुझे ठीक नहीं पड़ता... आहाहा! वह परवश स्वाधीनपना खोकर बैठता है। आहाहा! उसे आवश्यक कर्म नहीं होता। अवश्य कार्य-अवश्य कर्म उसे नहीं होता। अनावश्यक भटकने का होता है। आहाहा! देखो न! कहाँ संसार... ओहोहो! अब इन्दिरा को कितना विचार होगा कि लड़के को लाकर बड़ा प्रधान बनाना। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : विचारा हुआ किसका होगा? विचारा हुआ होगा। अपने स्ववश में झुकना, यह विचारा होगा। धारा हुआ होगा। अपने आनन्दादि गुण जो हैं, उसमें आवे तो वह विचारा हुआ होगा। पर में विचारा हुआ जरा कुछ नहीं होगा। आहाहा! दुश्मन आकर छुरा मारे, वह दुःख नहीं। उसके प्रति लक्ष्य जाने पर यह... यह... चिन्ता और कल्पना खड़ी होती है, वह दुःख है। आहाहा!

मुमुक्षु : छुरा कहाँ इसे छूता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : छूता नहीं। छुरा छूता नहीं परन्तु कल्पना करता है न? आहाहा!

अभी वहाँ हुआ। उसका सामनेवाला इन्दिरा का कोई व्यक्ति। क्या कहलाता है वह? जनता-जनता। जनता का। तुम्हारे शब्द याद नहीं रहते। यह शास्त्र के जो शब्द झट आवें, ऐसे ये शब्द याद नहीं रहते। आहाहा! वह जनता का व्यक्ति था... वहाँ दूसरा जनता के विरुद्ध के बैठे थे। इन्दिरा के। वे आओ... आओ... छुरा मार दिया। मार डाला।

आहाहा! उस छुरे का दुःख नहीं है, उस दुश्मन का दुःख नहीं है। जगत में कोई दुश्मन है ही नहीं। सब चीज़ जाननेयोग्य ज्ञेय है। एक ही प्रकार है। तीन लोक के नाथ से दुश्मन जीव तक सब ज्ञेय है। उसमें यह ठीक है और यह अठीक है, ऐसे दो भाग ज्ञेय में नहीं है। आहाहा! ऐसे दो भाग करना, वही परवश और पराधीन है। राग आवे, राग आवे तो भी उसके वश नहीं होता। आहाहा! यहाँ तक पहुँचना अब। शान्तिभाई! वे लाखों रुपये पैदा हों, वहाँ हुकम... क्या कहलाता है वह? आहाहा! पैदा किसे कहना? कहते हैं। पैसा आया, वह मेरा आया, मुझे आया, यह कहना किसे? वह चीज़ तो ज्ञेय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आया तो उसके कारण से। उसकी क्रियावतीशक्ति के कारण क्षेत्रान्तर आया। वह तेरे कारण आया नहीं। आहाहा! वास्तव में तो उसके पुण्य के कारण (भी) आया नहीं। पुण्य के परमाणु अलग और यह चीज़ आवे, वह अलग। कहलाता अवश्य है कि पुण्य के कारण आया, परन्तु फिर भी वह स्वतन्त्र चीज़ उस समय में आयी है। उसे ऐसा कहा जाता है कि यह मुझे मिली और मैंने पैदा किया, यह भ्रम है, भ्रमणा है। आहाहा! कठिन काम है।

जो धर्मी। योगी अर्थात् धर्मी। **निज आत्मा के परिग्रह के अतिरिक्त...** आहाहा! अपना भगवान ज्ञान और दर्शन, आनन्दमय है। **अन्य पदार्थों के वश नहीं होता और इसीलिए जिसे 'अवश' कहा जाता है,...** पर के वश नहीं होता, इसलिए उसे अवश, अवश अर्थात् वश नहीं होता। आहाहा! जो धर्मी, आत्मा के सिद्धस्वरूप में जुड़ान करता है,... आहाहा! वह पर के वश नहीं होता। उस धर्मी जीव को अवश्य आवश्यक कर्म जानना। आवश्यक कार्य अवश्य उसके पास है। अवश्य कार्य अवश्य उसके पास है। आहाहा! बाकी तो पूरे दिन अनावश्यक अकेला पाप का काम करके पाप का पोटला बाँधे। आहाहा!

परमजिनयोगीश्वर... परम धर्मी जीव को **निश्चयधर्मध्यानस्वरूप परम-आवश्यक-कर्म अवश्य है...** कहते हैं कि निश्चयधर्मध्यानस्वरूप परम आवश्यक कर्म निज आत्मा के वश हुए को अवश्य होता है। पर के वश हुआ चाहे तो तीन लोक का नाथ हो, उसके आश्रय से भी यदि होवे तो वह परवश और राग है, वह पराधीनता है।

आहाहा! उसे अवश्य, परम आवश्यकवाला कार्य अवश्य है, ऐसा जानना। **(वह परम-आवश्यक कर्म) निरवयवपने का उपाय है,...** यह क्या कहते हैं ? अवयव अर्थात् शरीर। शरीररहित होने का यह उपाय है। अवयव अर्थात् शरीर, निरवयव अर्थात् शरीररहित। स्व के आश्रय से चिदानन्द विकल्परहित के आश्रय से हुआ जो भाव, वह अवश्य है, स्वाधीन है और वह निरवयवपने का, शरीररहितपने को प्राप्त करने का कार्य है। आहाहा! उसको निश्चय लगे। भाई! सत्य ही यह है। गप्प मारकर व्यवहार कर-करके अनादि से यह मर गया है। आहाहा! आत्मा व्यभिचार आदि करे और मरकर वापस नरक में जाना। आहाहा! नरक में भी प्रतिकूल संयोग का पार नहीं होता। उसके ऊपर लक्ष्य जाए तो दुःखी... दुःखी। दुःख की पीड़ा सहन नहीं होती, ऐसा दुःख। आहाहा! आनन्द का नाथ स्ववश न पड़े और परवश पड़े, उसे शरीर मिलता है और दुःखी होता है।

यहाँ कहते हैं, स्ववश देखे, वह कर्म निर्भयपने का उपाय है। शरीर का नहीं मिलना, उसका यह उपाय है। आहाहा! भगवान आत्मा जिसमें भव और भव के भाव का अभाव है, उसका जिसने भाव किया और आश्रय लिया, वह कार्य शरीररहित होने का वह कार्य है। बाकी दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! पर की सेवा करे, पर को... जाए, पर को जिला दे... आ जाए। कृपा हो जाए। अभयदान दे। आहाहा! सब जगत से उल्टा है। अभयदान दे। अभयदान किसका ? स्वयं अपने आनन्दगुण में दान स्वयं दे। सम्प्रदान नाम का गुण है। आत्मा में सम्प्रदान नाम का गुण है। वह स्वयं अनन्त गुण पर लक्ष्य करे तो स्वयं गुण को स्वयं अपने को दे। स्वयं ही ले और स्वयं ही दे, इसका नाम दान है। आहाहा! यह पैसा और लक्ष्मी और मुनि को आहार (देना), उसमें कोई स्ववशपना नहीं है। वह सब परवशपना है। आहाहा! गजब बात है। तीन लोक का नाथ तीर्थंकर जब छद्मस्थरूप से होते हैं, तब आहार लेने जाते हैं, उन्हें भी आहार दे, वह परवश है, राग है। आहाहा!

अपने स्वरूप में से बाहर हट जाना और पर का आश्रय लेना, वह दुःख की खान है। अपना आश्रय लेना, वह आनन्द की खान है। आहाहा! और वह जीव का आवश्यक कर्म स्व के आश्रय से हुआ, वह शरीररहित होने का उपाय है। बाकी दूसरे शरीररसहित होने के उपाय हैं। आहाहा! है ? **निरवयवपने का उपाय है, युक्ति है।** युक्ति... युक्ति...

अवयव अर्थात् काय;... इसका अर्थ करते हैं। निरवयवपने का अर्थ करते हैं।

अवयव अर्थात् काय; उसका (काय का) अभाव, वह अवयव का अभाव (अर्थात् निरवयवपना)। परद्रव्यों को अवश जीव निरवयव होता है... आहाहा! परद्रव्य के आधीन नहीं होता, वह अवश्य कर्मरहित, शरीररहित होता है। आहाहा! एक-एक गाथा... क्या है? यह तो पंचम काल के टीकाकार मुनि हैं। अभी नौ सौ वर्ष पहले हो गये हैं। गाथा दो हजार वर्ष पहले की है और ये कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! उसमें और टीका करनेवाले ऐसे मिले, पद्मप्रभमलधारिदेव! आहाहा! ...अनुभव करते हैं और आनन्द को अनुभवते-अनुभवते हम मुक्ति को प्राप्त करनेवाले हैं। आहाहा! पंचम काल के साधु। आहाहा! क्योंकि आत्मा स्वयं मुक्तस्वरूप है। इसलिए उसकी दृष्टि जहाँ अनुभव हुआ, वहाँ से मुक्ति की शुरुआत हो गयी। आहाहा! समझ में आया?

समयसार में पीछे कलश में है कि साधक जीव-धर्म का साधनेवाला जीव ऐसा जहाँ लक्ष्य करें तो राग और भव है; ऐसा लक्ष्य करे, वहाँ मुक्ति है। एक समय में, हों! आहाहा! अभी साधक है न? केवल (ज्ञान) हुआ नहीं। तब तक ऐसे लक्ष्य करे, वहाँ भव है। उसी समय में ऐसे लक्ष्य करे वहाँ मुक्ति है। अन्तर में लक्ष्य करे, वहाँ मुक्ति है। बाहर में जितना लक्ष्य करे, उतना संसार है। आहाहा! इसमें तो इसे कुछ करना और कुछ करे तो हो, ऐसा है परन्तु करे तो हो, यह करे तो हो। करना तो है। आहाहा!

शुद्धचैतन्य भगवान परम ज्ञान और आनन्द का सागर, उसके वश होकर जो क्रिया होती है, वह तो शरीररहित होने की क्रिया है। भगवान के स्मरण आदि की जितनी परवश होने की क्रिया है, वह भी भव का कारण है। आहाहा! पंच परमेष्ठी का स्मरण, वह राग भव का कारण है। आहाहा! स्व और पर दो चीज़ है। स्व चैतन्यमूर्ति का आश्रय, वह शरीररहित होने का उपाय है। उसे छोड़कर पर का आश्रय लेना, वह शरीर का कारण है। भव होने का, भव उत्पन्न होने का कारण है। आहाहा! पूरे दिन धन्धा करना, ऐसा सब करना। फुरसत कब? ऐई! मधुभाई! क्या करना? यह सब हीरा और माणिक में अन्दर घुस गये हैं। आहाहा! उसमें घुस तो नहीं जाता परन्तु वे मेरे हैं और मैं उनका व्यापार करता हूँ, ऐसा जो भाव, उसमें घुस जाता है। आहाहा!

परद्रव्यों को अवश जीव निरवयव होता है... परद्रव्य के वश नहीं होता, वह अवश शरीररहित होता है। आहाहा! **(अर्थात् जो जीव परद्रव्यों को वश नहीं होता, वह**

अकाय होता है)। उसे काया-वाया मिलती नहीं। आहाहा! वह शरीररहित हो जाता है। आहाहा! समयसार जब पहले हाथ में आया (संवत्) १९७८ के वर्ष में। तब मैंने तो तुरन्त बाहर प्रसिद्ध किया था कि यह शरीररहित होने का उपाय है, सेठ! कहा। परन्तु तब तो उसमें (स्थानकवासी में) थे, इसलिए कुछ विरोध नहीं करे। फिर तो विरोध किया। १९७८ के वर्ष में समयसार हाथ में आया। सेठ था, दामोदर सेठ। दस लाख रुपये तब साठ वर्ष पहले थे। अभी तो उनकी कीमत बढ़ गयी। परन्तु वह कुछ... आहाहा! उससे कहा- यह अशरीरी पुस्तक है, सेठ! कहा। यह शरीररहित होना हो तो यह पुस्तक है। यह पुस्तक है, इसका अर्थ कि यह पुस्तक स्वयं नहीं, इसकी ओर लक्ष्य करने से विकल्प छोड़कर निर्विकल्प हो। आहाहा! उसमें यह कहा है। उसमें समयसार में निर्विकल्प होने को कहा है। निर्विकल्प होना, यही शरीररहित होने का उपाय है। आहाहा! यह सब काम सिर पर लिये हों, उनका क्या करना?

वह लड़का सवेरे मर नहीं गया? इन्दिरा का लड़का। सवेरे आठ बजे जाना पड़ेगा, वहाँ तो वह मर गया। बहुत काम सिर पर लिये थे। आहाहा! इन्दिरा को भी उसे बड़ा प्रधान बनाना था।

मुमुक्षु : किसी का विचारा कुछ होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे यह करना था। उसमें यह हुआ। आहाहा! किसकी क्या स्थिति / अवस्था होगी? बापू! वह पर की वस्तु कहीं आत्मा के आधीन नहीं है। आहाहा! यह देह की स्थिति की अवस्था ही इतनी वहाँ आत्मा की रहने की थी। कर्म के कारण नहीं। आत्मा की योग्यता के कारण शरीर में इतना ही रहना था, तब आयुकर्म था उतना, ऐसा कहने में आता है। बाकी कर्म है, वह पर है। आत्मा भगवान पर है, कर्म को आत्मा स्पर्श नहीं करता। आहाहा! इसलिए आयुप्रमाण जीता है, ऐसा भी नहीं है। उसकी अपनी पर्याय की योग्यता प्रमाण जीता है। आहाहा! व्यवहार के रसियों को यह सब कठिन लगता है। एकदम व्यवहार-व्यवहार यह करो.. यह करो... यह करो... व्यवहार साधन है। आहाहा! आर्यिका ने अर्थ किया। नियमसार 'सार अर्थात् मिथ्यात्व का अभाव' उसके विरुद्ध की व्यवहार क्रिया का अभाव नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह निश्चय है, उससे विरुद्ध है, वह संसार का कारण है। व्यवहाररत्नत्रय संसार का कारण है। आहाहा! परन्तु पुण्य जरा... ऐई... दिल्ली में बड़ा पच्चीस लाख का जम्बुद्वीप बनाया। तीस फुट का यहाँ हस्तिनापुर में मानस्तम्भ (सुमेरु) बनाया है। लोग बहुत इकट्ठे होते हैं। आहाहा! श्रद्धा बीस पन्थी की और हस्तिनापुर में प्रमुख हैं, उनकी श्रद्धा तेरापंथी की है। फिर अन्दर से विवाद उठते हैं... श्वेताम्बर के पश्चात् नाम बहुत आया, वह श्वेताम्बर में... थे। अरे रे! आहाहा! वह तो ऐसा कहे कि पर के अच्छे काम करें, देशसेवा आदि, उससे जन्म-मरण मिटने का उपाय है। व्यवहाररत्नत्रय, वह निश्चय का कारण है। वह निश्चय से विरुद्ध उसे कहो, वह मिथ्या बात है। निश्चय से विरुद्ध तो मिथ्यात्व है। आहाहा! परन्तु यहाँ निश्चय की जो क्रिया चलती है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र और निश्चय, उससे विरुद्ध, वह उसकी व्यवहारक्रिया है। आहाहा!

व्यवहारक्रिया, वह पराधीन शरीर का कारण है। शरीर मिलेगा और चार गति में भटकेगा। आहाहा! परन्तु क्या हो? कौन किसे कहे? और कौन किसकी माने? कोई किसी की माने, ऐसा है? भगवान की भी कोई माने, ऐसा है? उसे-स्वयं को माने, तब भगवान का माना, भगवान का निमित्त कहने में आता है। आहाहा! भगवान को मानने में भी भगवान कोई कारण नहीं है। यह तो अपने को विकल्प उठा और माने, तब भगवान को निमित्त कहा जाता है। आहाहा! वह भी माने, वह राग संसार है। शुभराग, वह संसार है, वह घोर संसार है। नियमसार में है। यह शुभराग, वह घोर संसार है। ऐसा नहीं कि अशुभ की अपेक्षा शुभ ठीक है। घोर संसार।

भगवान आनन्द के नाथ से विरुद्ध भाव, तीन लोक का नाथ चैतन्य निरंजन नाथ से-अमृत के सागर से विरुद्ध भाव। वह अमृत का सागर भरपूर प्रभु है। राग उससे विरुद्ध है, वह तो जहर है। आहाहा! चाहे तो शुभराग परन्तु अन्दर से जहर है। जीव का जीवन वह नहीं है, नाथ! आहाहा! वह जीव का जीवन नहीं है। जीव का जीवन तो शुद्धोपयोग, वह जीव का जीवन है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

(जो जीव परद्रव्यों को वश नहीं होता, वह अकाय होता है)। इस प्रकार निरुक्ति-व्युत्पत्ति है। निरवयव कहा न? निरवयव की व्याख्या की है। निरवयव की व्युत्पत्ति अर्थात् अवयवरहित। अवयव अर्थात् शरीररहित। आहाहा! यहाँ तो दो बातें हैं।

या शरीर संसार और या मुक्ति। कोई बीच की दशा नहीं है। आहाहा! जितना स्ववश होता है, उतनी मुक्ति क्योंकि स्वयं मुक्तस्वरूप है, वह मुक्ति का कारण होता है और राग बन्ध का कारण है, वह संसार का कारण होता है। पुण्य-पाप (अधिकार) में आता है। यह राग स्वयं बन्धस्वरूप है, वह बन्ध का कारण है और आत्मा तो मुक्तस्वरूप है। अन्दर में राग से मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! ऐसी बात सुनी भी नहीं होगी, बाहर में उलझ गया। विपरीतता। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत घोटाला किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घोटाला है। पहले से अनादि से। अनादि के जीव... आहाहा! उसमें से बदल जाना। यह... बात है। आहाहा! अरे! भगवान! एक ओर संसार तथा एक ओर मुक्ति। दो है। अब जितना चैतन्य भगवान का अवलम्बन, उनकी शरीररहित होने की दशा और जितना पर का अवलम्बन, वह शरीरसहित होने की दशा। रहित - सहित। आहाहा! एक-एक गाथा में कितनी बात की है!

श्लोक-२३९

[अब इस १४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

योगी कश्चित्स्वहितनिरतः शुद्धजीवास्तिकायाद्,
अन्येषां यो न वश इति या सन्स्थितिः सा निरुक्तिः।
तस्मादस्य प्रहत-दुरित-ध्वान्त-पुञ्जस्य नित्यं,
स्फूर्जज्ज्योतिःस्फुटितसहजावस्थयाऽमूर्तता स्यात्।।२३९।।

(वीरछन्द)

कोई योगी लीन स्वहित में शुद्ध जीवघन के अतिरिक्त।
पर-पदार्थ के वश नहिं होता यह सुस्थिति ही अवश निरुक्ति।

निज में सदा लीन रहकर ही दुरित तिमिर का नाश किया।
प्रगट ज्योति से सहज दशा है अतः उसे बिनमूर्तपना॥२३९॥

[श्लोकार्थ :] कोई योगी स्वहित में लीन रहता हुआ शुद्धजीवास्तिकाय के अतिरिक्त अन्य पदार्थों के वश नहीं होता। इस प्रकार जो सुस्थित रहना, सो निरुक्ति (अर्थात् अवशपने का व्युत्पत्ति-अर्थ) है। ऐसा करने से (-अपने में लीन रहकर पर को वश न होने से) *दुरितरूपी तिमिरपुंज का जिसने नाश किया है, ऐसे उस योगी को सदा प्रकाशमान ज्योति द्वारा सहज अवस्था प्रगट होने से अमूर्तपना होता है॥२३९॥

श्लोक -२३९ पर प्रवचन

[अब इस १४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

योगी कश्चित्स्वहितनिरतः शुद्धजीवास्तिकायाद्,
अन्येषां यो न वश इति या सन्स्थितिः सा निरुक्तिः।
तस्मादस्य प्रहत-दुरित-ध्वान्त-पुञ्जस्य नित्यं,
स्फूर्जज्ज्योतिःस्फुटितसहजावस्थयाऽमूर्तता स्यात्॥२३९॥

श्लोकार्थ : आहाहा! **कोई योगी स्वहित में लीन रहता हुआ...** योगी अर्थात् कोई बाबा-बाबा योगी, ऐसा नहीं। योगी अर्थात् यह आत्मा का जुड़ान करे, वह योगी। आहाहा! कोई भी धर्मी **स्वहित में लीन रहता हुआ...** आहाहा! अपने स्वहित में लीन रहता हुआ। परहित करने में लीनता छोड़कर, पर का हित कर नहीं सकता। आहाहा! पर को मदद नहीं कर सकता, पर को एक पाई भी नहीं दे सकता। पर को रोटी का टुकड़ा भी नहीं दे सकता। आहाहा! परचीज़ है, उसे दे कौन और ले कौन? वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। पररूप से जाननेयोग्य है। वह भी व्यवहार। आहाहा! एक रोटी का टुकड़ा भी दूसरे को दे सके... आहाहा! बहुत तृषा लगी हो और तृषा से तड़पता हो, उसे पानी पिलाना, वह पानी दे सके, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! यह बात कैसे जँचे? पूरे दिन या व्यवहार के... हो

* दुरित=दुष्कृत; दुष्कर्म। (पाप तथा पुण्य दोनों वास्तव में दुरित हैं।)

और यहाँ कहे वह कर नहीं सकता। करना माने तो संसार खड़ा है। शरीर है। नरक और निगोद में जाएगा। आहाहा! भव में जाते हुए किस जगह भव जाएगा, यह कहाँ ठिकाना है? यह चौरासी के अवतार भवभ्रमण पड़े हैं, बापू! आहाहा!

आया था न? भव का भय। इसमें आया था। **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** एक पृष्ठ पहले ही। टीका में। २३३। **संसार की घोर भीति से सर्व जीव नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** आहाहा! संसार से डरो। आहाहा! ऐसा कहते हैं। अरे! भव होगा, उसमें क्या होगा? डरो। परवश है। किस समय वहाँ क्या होगा? भवरहित होने की दशा को प्रगट करो, प्रभु! आहाहा! क्योंकि तू भवरहित ही है। भवरहित है, वह भवरहित हो सकता है। राग और पुण्य भवसहित है, वह तो संसार है; इसलिए उसमें से तो संसार मिलेगा। पुण्यभाव का, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव संसार है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा सुना नहीं होगा। दिये रखे वहाँ भाषण। ऐसा है और वैसा है, अमुक है और अमुक है। आहाहा!

कोई योगी... उसे योगी कहा। जो आत्मा में जुड़े, वह योगी; बाकी सब भोगी। आहाहा! ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु में जो जुड़े, वह योगी। **स्वहित में लीन रहता हुआ...** आहाहा! स्वहित में, स्वहित में लीन रहता हुआ। परहित का करना, करना कुछ है नहीं। आहाहा! गौशाला करना और यह सब (करते हैं), भूखे के लिये अनाज इकट्ठा करके रोटिया देना। आहाहा! लोगों को नौकरी में रखना कि जिससे... दे। यहाँ तुम्हारे भी देते थे कुत्ते को रोटियाँ। एक बार सुना अवश्य था। अपने को बहुत खबर नहीं है, कोई... रोटियाँ देता था। पोपटभाई की तरफ से था। पोपटभाई की तरप से। पोपटभाई की तरफ से था। यहाँ कुत्ते को रोटियाँ देते थे। परन्तु रोटियाँ पर, कुत्ता पर, दे कौन? ले कौन? शान्तिभाई! ऐसा है, बापू! आहाहा!

एक ओर सारा राग संसार तथा ओर भगवान। जिसमें संसार है ही नहीं और संसार में आत्मा है ही नहीं। संसार की दशा में आत्मस्वरूप है ही नहीं और आत्मस्वरूप में संसार है ही नहीं। आहाहा! ऐसे धर्मी स्वहित में लीन रहता हुआ **शुद्धजीवास्तिकाय...** भाषा कैसी ली है, देखा! शुद्धजीव नहीं लिया। वीतराग सर्वज्ञदेव ने असंख्य प्रदेशी जीव देखा है। इसके अतिरिक्त—सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने नहीं देखा। किसी जगह यह बात नहीं

है। आहाहा! श्वेताम्बर में भी जो असंख्य प्रदेशी है, उसमें उनकी भूल है क्योंकि ३४३ राजू (कहे हैं), उसमें उनकी भूल है। स्वयं स्वीकार किया है। अपने यह ३४३ (राजू की) भूल है, तो फिर जीव के प्रदेश ३४३ राजू प्रमाण है, तो उसमें भूल है तो इसमें भी भूल हुई। आहाहा! जगत का भाग्य कि यह रह गया, यह वस्तु (रह गयी)। आहाहा! भवरहित की बात। आहाहा! इसके कान में पड़ना भी मुश्किल पड़ती है, इसे हाँ करना तो मुश्किल पड़े, इसका परिणमन होना तो महामुश्किल पड़े। आहाहा! ऐसा जो मार्ग... आहाहा!

कहते हैं, यह **शुद्धजीवास्तिकाय...** भाषा कैसी ली है? वीतराग के अतिरिक्त जीवास्तिकाय, काय, अस्तिकाय। असंख्य प्रदेशी है, इसलिए उसे अस्तिकाय कहा। एक जीव असंख्य प्रदेशी है, भले निगोद के राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव, एक-एक जीव के असंख्य प्रदेश और एक-एक जीव के साथ तैजस और कार्मणशरीर। आहाहा! सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात किसी ने देखी नहीं। वस्तुस्थिति भी यह है। आहाहा! असंख्य प्रदेशी। इसलिए यहाँ शुद्धजीवास्तिकाय शब्द प्रयोग किया है। शुद्ध जीव अकेला शब्द प्रयोग नहीं किया। शुद्धजीवास्तिकाय। अस्तिकाय अर्थात् असंख्य प्रदेशी। आहाहा!

असंख्यप्रदेश में भी विरोध करते हैं। यह तो विरोध है। वस्तु का स्वरूप ही यह है। संकोच-विकास होता है। उस असंख्यप्रदेशी के संकोच-विकास नहीं। असंख्यप्रदेश घटते-बढ़ते नहीं। संकोच-विकास में असंख्यप्रदेश घटते-बढ़ते नहीं। लोकप्रमाण समुद्घात करे तो इतने प्रदेश और राई के टुकड़े जितने में असंख्य भाग में... आहाहा! आत्मा अनन्त, उसके प्रदेश भी एक-एक के असंख्य। आहाहा!

कोई योगी स्वहित में लीन रहता हुआ शुद्धजीवास्तिकाय के अतिरिक्त... आहाहा! शुद्ध जीवास्तिकाय। जीव अस्ति और असंख्यप्रदेशी काय। आहाहा! उस **शुद्धजीवास्तिकाय के अतिरिक्त अन्य पदार्थों के वश नहीं होता।** राग के विकल्प में भी वश नहीं होता। आहाहा! भेदज्ञान होने के बाद पर के वश होता ही नहीं। वस्तु होती है। राग आता है तो भी परवश नहीं होता। आहाहा! **अन्य पदार्थों के वश नहीं होता। इस प्रकार जो सुस्थित रहना...** ऐसा जो आत्मा में सुस्थित रहना। आहाहा! ऐसा करने जाए। अब लड़के छोटे (हों)। दो वर्ष का, चार वर्ष का, छह वर्ष का और आठ वर्ष का। दो-

दो वर्ष में एक-एक लड़का हो। सोलह वर्ष में आठ हों। एक, दो और एक चार और एक छह और एक आठ और एक दस। इन सबको सम्हालना... आहाहा! बारह भाया है। बीछिया में... बीछिया में। बारह भाया। उसमें क्या है? चक्रवर्ती को चौंसठ हजार लड़के हैं। आहाहा! परन्तु समकिती है, वह अपने स्वभाव में और पर में कुछ भी स्पर्श नहीं करने देता। आहाहा! मेरा यह है और मैं इसका, यह स्वप्न में नहीं होता। आहाहा! सोलह-सोलह हजार देव सेवा करते हों, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें हजार सैनिक। मेरे प्रभु आत्मा के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं है। आहाहा!

यहाँ यह कहते है। **जो सुस्थित रहना सो निरुक्ति (अर्थात् अवशपने का व्युत्पत्ति-अर्थ) है।** अवशपना अर्थात् पर के वश न होना और स्व के वश होना, ऐसी उसकी व्युत्पत्ति का अर्थ है। **ऐसा करने से (-अपने में लीन रहकर पर को वश न होने से)...** आहाहा! **दुरितरूपी तिमिरपुंज....** पुण्य और पाप दोनों दुरित हैं। आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, परमात्मा का स्मरण, यह सब दुरित है। यह आत्मा की रीति नहीं है। आहाहा! है न नीचे। **दुरित=दुष्कृत; दुष्कर्म। (पाप तथा पुण्य दोनों वास्तव में दुरित हैं।)** आहाहा! इसमें भी कहा न? मोक्षपाहुड़ में। '**परदव्वादो दुग्गई**' कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्टपाहुड़ में ऐसा कहा है कि यदि तेरा लक्ष्य स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य में जाएगा तो दुर्गति है। आहाहा! दुर्गति अर्थात् वह चैतन्य की गति नहीं है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों को जगत की पड़ी नहीं है। ऐसा कहेंगे तो समाज सुगठित रहेगी या नहीं? समाज में भाग पड़ जाएँगे या नहीं? यह वाणी आयी, वह आयी - निकली। उसमें वे कर्ता-वर्ता नहीं हैं। आहाहा! उस वाणी का फल आयेगा या नहीं? लोग समझेंगे या नहीं? उनकी संख्या बढ़ेगी या नहीं? इसकी भी जिन्हें दरकार नहीं है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! परन्तु उसका फल भी कठिन है न! मोक्ष! आहाहा! 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' भूतकाल की अपेक्षा भविष्य अनन्त गुणा। वह इस आत्मा के स्ववश होकर हुआ जाता है। अवयवरहित अर्थात् शरीररहित। उस शरीररहित होकर काल (जाएगा, वह) भूतकाल की अपेक्षा अनन्त गुना भविष्य काल है। आहाहा! भूतकाल का तो अभी अन्त भी आया और भविष्य का शुरु होगा, उसका कहीं अन्त ही नहीं है। आहाहा! फिर भूतकाल की अपेक्षा भविष्य काल अनन्त गुना। अनन्त-अनन्त आनन्द में रहना। आहाहा!

'अनुभवी को अकेला रे आनन्द में रहना... भजना परिब्रह्म को दूसरा कुछ न कहना

रे' आहाहा! परिब्रह्म अर्थात् स्वयं आत्मा। आहाहा! कठिन काम पड़े। साधारण प्राणी को निवृत्ति नहीं, फुरसत नहीं और यह अत्यन्त निवृत्तस्वरूप, जिसे राग का-विकल्प का तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस विकल्प का भी जिसे स्पर्श नहीं। जिसे आत्मा स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अब उसे इस दुनिया की सब चीज़ से दूर रखना... आहाहा! वह यहाँ कहा।

ऐसा करने से **(-अपने में लीन रहकर पर को वश न होने से) दुरितरूपी तिमिरपुंज का...** पुण्य और पाप दोनों दुरित है। आहाहा! पर की दया का भाव, वह दुरित है। आहाहा! वह राग है। आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध जितना भाव, उतना दुरित है। उस **दुरितरूपी तिमिरपुंज...** इस पुण्य को भी अन्धकार का ढ़ेर कहा। आहाहा! तिमिर अर्थात् अन्धकार का पुंज है। आहाहा! क्योंकि वह शुभ अन्धेरा है। शुभ में प्रकाश नहीं है। शुभ और अशुभभाव दोनों अन्धकार है। उनमें चैतन्य का प्रकाश नहीं है। आहाहा! चैतन्य के प्रकाश के अभाव में वह अन्धकार है, इसलिए उसे दुरित तिमिर कहा है। अन्धकार, बुरा अन्धकार, दुरित अन्धकार। आहाहा! दिगम्बर सन्तों को कहाँ पड़ी है। यह सुनते हुए लोग कैसे होंगे? आहाहा!

दुरितरूपी तिमिरपुंज... यह पुण्य और पाप का भाव दुरित और अन्धकार का ढ़ेर। आहाहा! **जिसने नाश किया है...** आहाहा! ऐसे पुण्य-पापरूपी तिमिर अन्धकार के पुंज का जिसने नाश किया है। **ऐसे उस योगी को सदा प्रकाशमान ज्योति...** उस अन्धकार का नाश हुआ और प्रकाश प्रगट हुआ। अन्दर चैतन्य प्रकाश प्रगट हुआ। आहाहा! **उस योगी को सदा प्रकाशमान ज्योति...** सदा प्रकाशमान ज्योति। किसी समय भी राग के वश नहीं। राग आवे, परन्तु उसे ज्ञेयरूप से अपने में रहकर उसे भिन्न जाने। ज्ञान में रहकर, राग आवे उसे भिन्न जाने। आहाहा! व्यवहार के सब दिल्ली में इकट्ठे हुए हों, वहाँ ऐसा रखते हैं। क्या है यह?

यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य के परिणाम, जिन्हें तू अच्छा कहता है, वे दुरित हैं और वह अन्धकार है, ले! आहाहा! अन्धकार **जिसने नाश किया है, ऐसे उस योगी को सदा प्रकाशमान ज्योति द्वारा सहज अवस्था प्रगट होने से...** आत्मा की स्वाभाविक दशा प्रगट होने से **अमूर्तपना होता है।** आहाहा! वह अमूर्त आत्मा हो जाता है। पूर्णानन्द की प्राप्ति में अशरीरी अमूर्त आत्मा हो जाता है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)